**International Journal of Advanced Research and Development**
**ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24**
**www.advancedjournal.com**
**Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 265-267**

# मुक्तिबोध की कविताओं का भाषागत वैशिष्ट्य

**डॉ0 सुरसरि तरंग मिश्र**

प्रवक्ता–हिन्दी, उ0प्र0 सैनिक स्कूल, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।

## प्रस्तावना

मुक्तिबोध की काव्य भाषा में बहुरंगी बुनावट है। त्वरा, आवेग और ध्वन्यात्मकता मुक्तिबोध की काव्यभाषा के प्राण हैं। उनमे तत्सम, तद्भव, देशज एवं अंग्रेजी शब्द, जीवन जगत के विविध व्यापार, उद्योग, विज्ञान राजनीति, दर्शन आदि क्षेत्रों के शब्दों का मंथन है। काव्यात्मक प्रयोग में वह न केवल भाषा को माँजते हैं। अपितु एक विशिष्ट ज्ञान मीमांसा का भी उत्पाद करते हैं जीवन और जगत के इतने क्षेत्रों से वह शब्द उठाते हैं की नई कविता के लिये ही नही वरन् समूची हिन्दी कविता के लिए यह एक बड़ी उपलब्धि है। मुक्तिबोध के पााठक को रचनाकार के सामाजिक, राजनैतिक सरोकारों को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण के माध्यम से स्पष्टता की ओर बढ़ना चाहिए।

## उद्देश्य

मुक्तिबोध की रचनाओं का सम्यक अवगाहन करने पर पता चलता है कि 1939 तक उनकी कविताओं में किसी हद तक छायावादी काव्य–भाषा देखने को मिलती है, लेकिन जैसे–जैसे वह मार्क्सवाद की तरफ बढ़ते हैं उनकी काव्य–भाषा में स्पष्ट परिवर्तन देखा जा सकता है। यदि वह मार्क्सवादी न हुए होते तो भी परिवर्तन आता ही, क्योंकि बढ़ते हुए वय में जैसे–जैसे उनकी कला परिष्कृत हो रही थी, वैसे–वैसे काव्य–भाषा में अंतर आना स्वाभाविक था। ''क्या कारण है कि प्रेमचंद के भक्त मुक्तिबेध की भाषा प्रेमचंद जैसी सीधी–सादी और आम आदमी के लिए चिर–परिचित नहीं बन सकी, जबकि उन्होंने इसके लिए कम कोशिश नहीं की। जो रचनाकार 1945 तक नए सिरे से हिन्दी सीखने में लगा हुआ है।''[1] उसकी सर्जन–प्रक्रिया में भाषा का महत्व समझ सकते हैं। जाहिर है नए सिरे से हिन्दी सीखने से उनका आशय प्रसाद और निराला के निकट पहुँचकर अपना नया रास्ता बनाने का था, लेकिन भाषा के मामले में उनकी यह कोशिश सफल नहीं होती है, वह संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का दामन छोड़ नहीं पाते हैं।

इसकी जड़ उनकी खास मानसिक बुनावट में मौजूद है। छायावादी से हिन्दी सीखकर वह रचना के क्षेत्र में उतरे। वह प्रेमचंद के भक्त भले ही हों, लेकिन जब उनकी हिन्दी बन सँवर रही थी। तब उन्होंने प्रेमचंद को उतना नही पढ़ा। जिन्हें पढ़ा, उन्हीं के संस्कारों से मुक्त भी होना चाहे, इसीलिए वह छायावाद की आलोचना करने का कोई भी अवसर चूकते नहीं, विषय–वस्तु की जमीन पर तो वह धीरे–धीरे मुक्त हो जाते हैं, भाषिक–विधान–छायावादी बिम्ब, प्रतीक, सौन्दर्यबोध, ध्वन्यात्मकता, से भी मुक्त हो जाते हैं, लेकिन संस्कृत–निष्ठ भाषा उनके साथ रहती है। द्वंद्व और तनाव जिसके स्वभाव में बद्धमूल था उसका काम प्रगतिवादियों–सी सपाट भाषा से भी नहीं चल सकता था। त्वरा, आवेग और ध्वन्यात्मकता मुक्तिबोध की काव्य–भाषा के प्राण हैं।

आनन्दवर्धन के ध्वन्यलोक पर बात करते हुए डॉ0 राधा बल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं–'आनंदवर्धन के सिद्धांत का मूलभूत वैचारिक ढाँचा दो शब्दों के द्वारा जाना जा सकता है–इशारा और गूँज। कविता का शब्द और अर्थ कुछ कहने के लिए इशारे बन जाते हैं और वे गूँज पैदा करते हैं। आनंदवर्धन ने ध्वनि के भेदों में एक भेद का नाम भी अनुस्वान–सन्निभ, अनुरणनव्यंग्य रखा, जिनका अर्थ–गूँज।'[2] आनंदवर्धन ध्वन्यालोक में ध्वनि को पाणिनि के स्फोट से जोड़ते हैं। क्या इसे महज संयोग कहा जायेगा कि कश्मीर के आचार्य आनंदवर्धन राधा अवंतिवर्मा (845–884ई0) के शासनकाल में ध्वनि सिद्धान्त दे रहे हैं। डॉ0 राधावल्लभ का कहना है–कश्मीर आनंदवर्धन के हजारों वर्ष पहले से ही दुर्दांत आक्रमणकारियों का प्रवेश–द्वार रहा है, फिर इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए। कि कश्मीर की धरती पर ध्वन्यालोक लिखा जाए। मुक्तिबोध के यहाँ हाड़तोड़ संघर्ष, अन्याय शोषण, दमन, विद्रोह, क्रांति और युद्ध की विराट गाथाएँ हैं, इसलिए उनकी भाषा में त्वरा, आवेग, ध्वन्यात्मकता का होना सजग कला का प्रमाण है–

मानो बूढ़ी दुनिया के सिर पर आग लगी
सिर जलता है, कंधे जलते।
यह अग्नि विश्वजित् फैली है जिन लोगों की
यह अग्नि विश्वजित् फैली है जिन लोगों की
वे नौजवान
इतिहास बनाने वाला सिर करके ऊँचा
भौहों पर मेघों जैसा
विद्युत भार
विचारों का लेकर
पृथ्वी की गति के साथ–साथ घूमते हुए
वे दिशा–काल घन वातावरण–पटल जैसे
चलते जन–जन के साथ
वे हैं आगे वे पीछे– (जब प्रश्नचिन्ह बौखला उठे)
x x x
युग की क्रान्ति की संपूर्ण सर्जन–शक्ति
का संकल्प
कवि–संकल्प बन लहरा रहा है,
लोकमन की प्राकृतिक अनिवार सर्जन शक्ति में
विश्वास बन
इतिहास की उद्दीप्त रक्तिम पंक्तियों में
छंद–गुंजन–पाश बन
युग–क्रांति का विक्षोभ
कवि–संकल्प बन लहरा रहा है
काँपता वह क्षितिज की
रवि–किरण–वीणा पर मधुर जयगान–सा।

उन्हें अपनी भाषा में युग–क्रान्ति की संपूर्ण संर्जन–शक्ति भरनी है, जिसमें लोक–मन का विश्वास हो, इतिहास की स्मृति हो और मधुरतम सौन्दर्य और संगीत हो। जाहिर है यह कितनी बड़ी चुनौती है। वह इस चुनौती में उत्तीर्ण ही नहीं होते हैं, एक मानक स्थापित करते हैं, क्योंकि भाषिक विधान में आवेग और ध्वनि का साहचर्य दूर तक सँभाले रखना नहीं है। यही मानना पड़ता है कि नए कवियों में मुक्तछंद में जैसी महारत मुक्तिबोध को हासिल थी,

वैसी दूसरे को नहीं।

मुक्तिबोध को नाद–व्यंजना की ताकत का सबसे अधिक अहसास इसीलिए था क्योंकि वह गली–सड़क की जिन्दगी को अत्यधिक संवेदनशीलता के साथ महसूस करते हैं और उतनी ही उत्कट बेचैनी के साथ बेहतरी के लिए, बदलाव की दुर्दांत परिकल्पना करते हें। इससे उनके स्नायु–मंडल पर भी दिनोदिन अधिक ही दबाव पड़ता जा रहा था, वह न्यूरोसिस की शिकायत करते हैं हृदय में रक्ता तालाब' का जिक्र वह कितनी ही कविताओं में करते हैं, नीली आग, विद्युत–लताएँ, प्रासाद, मीनार, खण्डहर, झरने, नदियाँ, कारखाने, आकाश, पहाड़, पठार, खोह, समुंदर तो उनके हमसफर ही थे। प्रभाकर माचवे को 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता एक कलाकार की स्केचबुक लगती है। तो मलयज को मुक्तिबोध के कविता–संसार में प्रवेश करने का एकदम अलहदा अनुभूति होती है–– 'मुक्तिबोध आत्मा के खानाबदोश हैं, कम से कम उनकी भाषा की सर्जनात्मक स्थिति का अध्ययन करने से यह बात मेरे दिमाग मे आती है।'[4] वस्तुतः मलयज के कथन का एक खास संदर्भ लम्बे–लम्बे बिम्बों में या शाखा से शाखा निकलते विचारों के व्यूह में घुसने से, व्यपक वस्तु–वैविध्य से ऐसा प्रतीत होता है। लेकिन यह उनकी भाषा के प्रति सामान्य कथन नहीं माना जाएगा, उनकी कलात्मक ऊँचाई का ज्ञान मलयज को भी था, उनकी सघन कला–चेतना की चर्चा वह पहले कर चुके हैं।

शब्दों के चुनाव की दृष्टि से उनका काव्य–संसार चमत्कृत करने वाला है, तत्सम–तद्भव और दूसरी भाषाओं की जैसी बहुरंगी बुनावट उनकी कविताओं में कौंध मारती है, वह अपने में एक उदाहरण है। जीवन और जगत के विविध व्यापार, चाहे रोजमर्रा की साधारण जीवनचर्या से संबंधित हों, या उद्योग, विज्ञान, राजनीति, दर्शन आदि क्षेत्रों से संबंधित हो काव्यात्मक प्रयोग में आकर न कि केवल भाषा को माँजते है, अपितु एक विशिष्ट ज्ञान–मीमांसा भी इजाद करते हैं, मसलन 'ओ अप्रस्तुत श्रोता''[5] कविता के महज तीन छंदों में शब्दों का प्रयोग देखा जाए–अँधेर कारखाने, हथियार, धारदार औजार, मस्तिष्क, बुद्धि, उर, आर–पार, शत अग्निकांड, लाभ–लोभ, पेट्रोल–टंकियाँ, स्टैंडर्ड, भभक, लायब्रेरी, गुम्बद, सफेद शहर, राख पुल, नदी, धंस गई, जमीनी परत, फँस गया, तेल, समुद्र, निन्यानबे फीसदी, अमोनियम फास्फेट, विषैली भाप–हवा, पक्षी, आकाश, जी हाँ, पूँजी अंतरराष्ट्रीय, नई किस्में, दुःख सनातन हैः

इसी अंधेरे कारखाने में बनते हैं हथियार
.....धारदार औजार बन रहे हैं।
जो मस्तिष्कों, बुद्धियों, उरों के आर–पार होकर
शत अग्निकांड–व्यापार बन रहे हैं।
ये लाभ–लोभ की क्षोभ भरी
पेट्रोल की टंकियाँ खड़ी हुई

उक्त छंद का अर्थ बताने की जरूरत नहीं है, सामान्य से सामान्य पाठक समझ सकता है। ऐसे बहुत–सी कविताओं में बीच–बीच में बहुत से छंद होते है, जो समान्य कथन में ही विशिष्ट संदर्भों से जुड़ते हैं, वहीं अभिधार्ध के साथ व्यंजनार्थ आवश्यक हो जाता है, जैसे–

अरूणोदय के पूर्व ही
तम–मग्न खंडहरों के मृदु–गंध–प्रसारों में
उद्ग्रीव कुंद–चम्पा–गुलाब की गंध लिए
मेरे युवजन–व्यक्तित्व यहाँ पर महक रहे क्षिप्रा के तट
वीरान हवाओं में
अरूणोदय के पूर्व ही[6]

एक तरफ नीहार बेला की ताजगी, चंपा, गुलाब की महक, क्षिप्रा के तट वीरान हवाओं में घुली हुई सुगंध और वहाँ उल्लसित होते हुए युवजन, दूसरी तरफ अँधेरे में डूबा खंडहर। क्षिप्रा की सुंदरता जो युवजन–परिजन का संस्कार कर रही है, उनमें सामंती और पूँजीवादी सभ्यता की घुटन से मुक्ति पाने की हिम्मत और उसके लिए संघर्ष करने का संस्कार भी भर रही है यदि इस व्यंजना को न लिया जाए, तो केवल अभिधार्थ से कविता की ऐड़ी–चोटी कुछ भी समझ में नहीं आएगी और अगर अभिधार्थ न लिया जाए, हर शब्द को अन्योक्ति माना जाए तो इतनी रोचक कविता का कबाड़ा होना तय है। मुक्तिबोध अपनी भाषा में ऐसे संस्कार भरते हैं, जिससे वह पूँजीवादी सभ्यता से लड़ने के साथ–साथ सामंती संस्कारों से भी लड़ सके। प्रदीप सक्सेना भारतीय नवजागरण के संदर्भ में ठीक कहते हैं कि 'यहाँ का लेजर क्लास सामंतवादी और राष्ट्रवादी है।'[7] मुक्तिबोध यह संस्कार कैसे भरते हैं? प्रत्यक्ष रूप–विधान, स्मृति रूप–विधान और कल्पित रूप–विधान, तीनों द्वारा। एडीसन ने प्रत्यक्ष रूप–विधान की अपेक्षा स्मृति रूप–विधान और कल्पित रूप–विधान को अधिक महत्व दिया।

'एडीसन कल्पित विधान को सर्वश्रेष्ठ बताता है, एडीसन से पहले हाब्स कहते हैं कल्पना और कुछ नहीं क्षयशील इंद्रियबोध है।' आचार्य शुक्ल प्रत्यक्ष रूप–विधान और कल्पित रूप–विधान दोनों को महत्व देते हैं, यह बात दूसरी है कि नीलकांत उन्हें मृत सौंदर्य की उपासना करने वाला घोषित करते हैं।[8]

मुक्तिबोध के यहाँ भाषा में कैसे तीनों रूप–विधान आते हैं, उनकी कोई कविता प्रत्यक्ष रूप–विधान के बिना शुरू नहीं होती है और कल्पित रूप–विधान के बिना खत्म नहीं होती है। मुक्तिबोध उन मार्क्सवादियों में नहीं हैं जो कल्पना की गहरी या दूर उड़ान को क्षयी बुर्जुआ प्रवृत्ति से जोड़ते हैं, बल्कि वह नया प्रस्थान बिन्दु देते हैं– मैदानों, गलियों, सड़कों को फैन्टेसी की ताकत। 'रंग एवं कैनवस के साथ–साथ भाषा की एकाकारिता।[10] मुक्तिबोध के यहाँ चमत्कृत करने वाली होती है, आवेग, ध्वनि, इंद्रियबोध, कल्पना, चित्रात्मकता, प्रतीकार्थ, स्वच्छ किन्तु सटीक शब्द–चयन में से एक दो को उसका कारण माना जाय तो यह नासमझी होगी, यह सारी चीजें मिलकर उनकी काव्य–भाषा की ताकत बनी हैं। आश्चर्य नहीं, जब बहुतेरे आलोचकों, की तरह विजय कुमार भी मुक्तिबोध की काव्य–भाषा को किसी हद तक एक रहस्यवादी ढंग की रोमान्टिक काव्य–भाषा मानते हैं।[11] वस्तुतः ऐसा भ्रम यथार्थ के अभिव्यक्ति के प्रगतिवादी ढर्रे को अतिक्रमित करते हुए एकदम अलहदा युक्ति अपनाने के कारण उत्पन्न हुआ।

यह अकारण नहीं है कि 15वीं सदी मैकियावेली (1469–1527) जो अपनी पुस्तक 'इल प्रिंसीप (शासक) 1514 मे लिखी गयी रचना के कारण राजनीति का इतना बड़ा पंडित माना गया। अपने एक शोधग्रंथ भाषा पर भी लिखता है– 'भाषा सम्बन्धी बातचीत'[12]। गोया उसे यह अच्छी तरह पता था कि भाषा और जनता तथा राजनीति का रिश्ता क्या है। मुक्तिबोध का मुहावरा प्रसिद्ध है––'पार्टनर, तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है, पॉलिटिक्स यानी आधारभूत सोच।' लेकिन यह कम अचरज में डालने वाला नही है कि पॉलिटिक्स के इतने पक्षधर मुक्तिबोध पॉलिटिक्स के डंडे से भाव को नहीं हाँकते, बल्कि उनकी नजर जनता के उस सोच और व्यवहार पर होती है जो पॉलिटिक्स निर्मित करती है, जीवन और जगत के इतने क्षेत्रों से वह शब्द उठाते हैं कि यह नयी कविता के लिए ही नहीं, समूची हिन्दी कविता के लिए एक बड़ी उपलब्धि है। लुडविग विटगैंस्टाइल (1889–1951) अपनी कृति 'फिलासॉफिकल इंवेस्टिगेशन्स' में कहते हैं– 'दार्शनिक समस्याएँ नहीं हैं, भ्रांतियाँ हैं, जो अनेकार्थता से उत्पन्न होती हैं। यद्यपि शब्दों के अर्थ अनगिन हैं, फिर भी स्पष्टता के लिए विश्लेषण करना

होगा–अनेकार्थता के कुहर–जाल को दूर करना होगा।''

## उपसंहार

मुक्तिबोध के यहाँ तमाम बात पाठक–प्रतीकों के चक्कर में अनावश्यक रूप से भी फँस जाती है और शब्दों के अनेकार्थ संभावनाओं से स्वयं क्लिष्टता ही हासिल करता है, फिर तो मुक्तिबोध की काव्य–भाषा पर भी ज्यादा ही अस्पष्ट होने का आरोप मढ़ देता है, गोया पाठक को रचनाकार के सामाजिक–राजनीतिक सरोकारों को ध्यान में रखते हुए विश्लेषण के माध्यम से स्पष्टता की ओर बढ़ना काम्य है, न कि उसमें रहस्यवाद देखना।

## संदर्भ


1. नेमिचंद जैन को लिखा हुआ प, रचनावली–6।
2. भारतीय काव्यशास्त्र की आचार्य परंपरा–आनंद वर्धन। राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ067।
3. रचनावली–6, मुक्तिबोध के पत्र।
4. मलयज की डायरी–2, संपादक नामवर सिंह, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 335।
5. संभावित रचनाकार 1558–59, राजनाँद–गाँव। मुक्तिबोध रचनावली–2, पृ0 99।
6. मेरे युवजन मेरे परिजन, मुक्तिबोध रचनावली–2, पृ0 99।
7. 1857 और नवजागरण के प्रश्नः पुनर्समीक्षा और प्रतितर्क, प्रदीप सक्सेना, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, 2004, पृ0 93।
8. श्रामचंद्र शुक्ल–नीलकांत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985, पृ0 98।
9. बिना तुम्हारे, संभावित रचनाकार 1958 के बाद, रचनावली–2, पृ0103।
10. आलोचना(पत्रिका) उत्तर–आधुनिकतावाद, उत्तर उपनिवेशवाद और भारत–अवधेश कुमार सिंह–सहस्रब्दि अंक 12, राजकमल, दिल्ली, 2003, पृ0 151।
11. आलोचना, सहस्राब्दि अंक 12– समाचार समय में कविता – विजय कुमार, जनवरी–मार्च 2003, राजकमल, दिल्ली, पृ0 28।
12. मेकियावेली शशिवंधुम हिन्द पॉकेट बुक्स, दिल्ली–2002, पृ0 28।
13. यहूदी वंश के एक आस्ट्रियन परिवार में जन्म। कैम्ब्रिज में अध्यापक, ब्रिटिश नागरिकता। विटगेंस्टाइन के 'फिलासॉफिकल इंवेस्टिगेशन्स' के बाद आक्सफोर्ड आरडिनरी लैंग्वेज फिलॉसफी' कहा गया। इसमें भिन्न–भिन्न दार्शनिकों ने भाग लिया, आस्टिन, राइल, आदि। इन लोगों का मानना है कि विश्लेषण end all नहीं है बल्कि begin all है– समकालीन पाश्चात्य दर्शन, प्रो0 बसंत कुमार लालू, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1996, पृ0 401।